9

भगवद्गीता
7वां अध्याय

प्रिय शिक्षार्थी पूर्व पाठ में आपने गणेशद्वादशनामस्तोत्र के माध्यम से भगवान गणपति की स्तुति तथा उनके नामों के महत्त्व को जाना। इस पाठ में आप तीन प्रकार की श्रद्धा के विषय में पढेंगे। ये तीन प्रकार की श्रद्धा भौतिक प्रकृति के भावों से उत्पन्न होती है। जो भावावेश में विश्वास करते है, जो कि अज्ञान से उत्पन्न होता है और अनित्य होता है तथा भौतिक परिणामात्मक होता है, जबकि सद् में किया गया कार्य बताये गये निषेध के अनुसार और हृदय से पवित्र होता है।

उद्देश्य

यह पाठ पढ़ने के बाद आप सक्षम होंगे:

- भगवद्गीता के 17 वे अध्याय के सभी श्लोकों का उच्चारण कर पाने में; और
- इस अध्याय का भावार्थ बता पाने में ।

9.1 भगवद्गीता 7वां अध्याय

अथ सप्तदशोऽध्यायः । श्रद्धात्रयविभागयोगः

17वां अध्याय शुरू होता है। श्रद्धा के तीन विभाग।

अर्जुन उवाच ।

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।

तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ।। १७–१ ।।

अर्जुन ने कहा –

हे कृष्ण! जो मनुष्य शास्त्रों के मत को छोडकर पूर्ण श्रद्धावान होकर देवादि का पूजन करते हैं उनकी स्थिति फिर कौन सी होती है, सात्विकी राजसी अथवा तामसी।

श्रीभगवानुवाच ।

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।

सात्त्विकी राजसी चौव तामसी चेति तां शृणु ।। १७–२ ।।

भगवान ने कहा –

देहधारी सभी मनुष्यों की स्वभाव से उत्पन्न श्रद्धा सात्विकी और राजसी तथा तामसी ऐसे तीनों प्रकार की ही होती है। मैं इस विषय में विस्तार से बताता हूँ।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।। १७–३ ।।

हे भरतवंशी! सभी की श्रद्धा उनके अन्तः करण (सत्व) के अनुरूप होती है। यह पुरूष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं वास्तव में वहीं है।

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।

प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ।। १७–४ ।।

जिस मनुष्य में सात्विक गुणों की प्रधानता होती है वह देवताओं को पूजते हैं, राजस पुरुष यक्ष और राक्षसों को तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं वे प्रेत और भूतगणों को पूजते हैं तथा मुख्य रूप से श्री शिव जी को भी इष्ट मानते हैं।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।

दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ।। १७–५ ।।

जो मनुष्य शास्त्रविधि से रहित केवल मन की इच्छा से तप करते हैं तथा दंभ और अहंकार से युक्त है, कामना के आसक्ति और भक्ति बल के अभिमान से भी युक्त हैं।

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।

मां चौवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ।। १७–६ ।।

शरीर में रहने वाले प्राणियों के मुखिया (ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा गणेश व प्रकृति को) व मुझे तथा इसी प्रकार शरीर के हृदय कमल में जीव के साथ रहने वाले नित्य ब्रह्मं का अनादर करने वाले अज्ञानियों को असुर स्वभाव वाले ही जान।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।

यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ।। १७–७ ।।

हे प्रिय अर्जुन! सभी मनुष्यों को अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार भोजन भी तीन प्रकार का प्रिय होता है। इसलिए वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन–तीन प्रकार के होते हैं। उनके इस भेद को तूम मुझसे सुनों।

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।

रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ।। १७–८ ।।

ऐसा भोजन जो आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले रस युक्त और स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय हों, ऐसा आहार सतो गुण प्रधान होता हैं।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ।। १७–९ ।।

कड़वा, खट्टा, नमकीन, लवणयुक्त बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुःख, चिन्ता तथा रोगों को उत्पन्न करने वाले आहार राजस पुरुष को रजोगुण प्रधान होते हैं।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ।। १७–१० ।।

जो भोजन ठीक से न पका हो, रस रहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है वह भोजन तामस पुरुष को प्रिय होता है।

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ।। १७–११ ।।

जो शास्त्र विधि से, नियत यज्ञ करना ही कर्तव्य समझते है, इस प्रकार मन को समाधान करके फल चाह नहीं रखते हैं ऐसे पुरुषों द्वारा किया जाने वाला यज्ञ सात्विक है।

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चौव यत् ।

इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ।। १७–१२ ।।

हे अर्जुन! केवल दंभ के वशीभूत और फल को ध्यान में रखकर जो यज्ञ किया जाता है, ऐसे यज्ञ को राजस समझ।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।

श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।। १७–१३ ।।

हे अर्जुन! शास्त्र विधि से रहित, अन्नदान से रहित, बिना वास्तवकि मन्त्रों के, बिना दक्षिणा के, बिना दीक्षा–उपदेश लिए और बिना श्रद्धा के किये जानेवाले यज्ञ को तामस यज्ञ समझ।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।। १७–१४ ।।

संत पुरूष, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनों का आदर, पवित्रता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा–यह शरीर सम्बन्धी तप कहा जाता है।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।

स्वाध्यायाभ्यसनं चौव वाङ्मयं तप उच्यते ।। १७–१५ ।।

जो उद्वेग न करने वाला, मधुर और हित कारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो धार्मिक–शास्त्रों के पठन का एवं परमात्मा के नाम के जाप का अभ्यास ही वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।

भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।। १७–१६ ।।

मन की प्रसन्नता, शान्त स्वभाव मौन (सांसारिक बातों में चुपी) आत्मानिग्रह (विचार का निग्रह) और भावों की भली भाँति पवित्रता, यह मन सम्बन्धी तप कहा जाता है।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।

अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ।। १७–१७ ।।

फल को न चाहने वाले, शास्त्र विधि अनुसार भक्ति में लीन पुरुषों द्वारा श्रद्धा पूर्वक तपे हुए उस पूर्वोक्त तीन प्रकार के तप को सात्विक कहते हैं।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चौव यत् ।

क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ।। १७–१८ ।।

जो तप सत्कार, मान रूपी पूजा के लिये और दंभपूर्वक किया जाता है, वह अस्थाई, नाशवान तप होता है जो राजस कहा गया है।

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।

परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ।। १७–१९ ।।

जो तप मूढतापूर्वक हठ से, अपने मन, वाणी और शरीर की पीड़ा के सहित और दूसरों का अनिष्ट करने के लिये किया जाता है वह तप तामस कहा गया है।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।

देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।। १७–२० ।।

दान देना ही कर्तव्य है इस भाव से जो दान समय और स्थिति तथा दान देने योग्य पात्र को दिया जाता है और फल की इच्छा न रखते हुए दिया जाता है वह दान सात्विक कहा गया है।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।

दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ।। १७–२१ ।।

किंतु जो दान बदले में उपकार के लिए अथवा फल के उद्देश्य से दिया जाता है तथा क्लेश पूर्वक अर्थात् दुःखी मन से दिया जाता है, वह दान राजस कहा गया है।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।

असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ।। १७–२२ ।।

जो दान गुरु की आज्ञा का तिरस्कार करके, अनादर करके और अनुचित समय स्थिति में, कुपात्र को दिया जाता है वह दान तामस कहा गया है।

ऊँ, तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।

ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ।। १७–२३ ।।

यह सांकेतिक मन्त्र पूर्ण ब्रह्म का है, ऐसे यह तीन प्रकार के पूर्ण परमात्मा के नाम सुमरण का आदेश कहा है और सृष्टि के आदि काल में विद्वानों ने उसी तत्व ज्ञान के आधार से वेद तथा यज्ञादि रचे।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।

प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ।। १७–२४ ।।

इस कारण से परमात्मा की स्तुति करने वालों तथा शास्त्र विधि से नियत क्रियाऐं बताने वालों की यज्ञ, दान और तप व स्मरण क्रियाएँ सदा 'ऊँ' को उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं।

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।

दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ।। १७–२५ ।।

पर ब्रह्म के तत् मन्त्र के जाप पर ही अन्त होता है तथा फल को न चाह कर नाना प्रकार की यज्ञ, तप रूप क्रियाएँ, मोक्षप्राप्त करने की इच्छा रखने वाली सभी इसी मंत्र से की जाती है।

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।

प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ।। १७–२६ ।।

'सत्' यह सारनाम तत् मन्त्र के अन्त में इसी पूर्ण परमात्मा के नाम के साथ सत्य भाव में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है तथा हे पार्थ! उत्तम कर्म में ही सत् शब्द का प्रयोग किया जाता है अर्थात् पूर्वोक्त दोनों मन्त्रों और तत् के अन्त में जोड़ा जाता है।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।

कर्म चौव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ।। १७–२७ ।।

यज्ञ, तप और दान में जो स्थिति है वह भी 'सत्' इस प्रकार कही जाती है। और उस परमात्मा के लिये किए हुए शास्त्र अनुकूल क्रिया

भक्ति कर्म में ही वास्तव में सत् शब्द के अन्त में कोई अन्य शब्द तत्वदर्शी सत्पुरूष द्वारा कहा जाता हैं।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ।। १७–२८ ।।

हे प्रिय अर्जुन! बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन, दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है वह समस्त 'असत्' है। वह हमारे लिए न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के बाद ही।

ऊँ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ।। १७ ।।

ऊँ, तत् सत् यह श्रीमद्भगवद्गीता – उपनिषद् में ब्रह्म विद्या में योगशास्त्र का श्री कृष्ण और अर्जुन के संवाद में तीन प्रकार की श्रद्धा का यह 17वां अध्याय हैं।

पाठगत प्रश्न– 9.1

(1) नीचे दिये गये प्रश्नों के उत्तर दिजिए–

1. मनुष्यों के लिए श्रद्धा कितने प्रकार की होती हैं?
2. आहार कितने प्रकार के होते हैं ?
3. तामस यज्ञ किसे कहा गया हैं?
4. सात्विक दान किसे कहाँ गया हैं?
5. तामस दान किसे कहा गया है?

आपने क्या सीखा?

- गीता के 17वें अध्याय का अर्थज्ञान।
- श्रद्धा के प्रकार।

पाठांत प्रश्न

1. गीता के 17वें अध्याय का सार अपने शब्दों में लिखिए।
2. दान के तीन प्रकारों की व्याख्या कीजिए।

उत्तरमाला

9.1

(1)

1. तीन प्रकार की
2. तीन प्रकार के ।
3. श्रद्धा से रहित यज्ञ
4. देश, काल और पात्र को ध्यान में रखकर दिया गया दान।
5. जो दान गुरू का अनादर कर, अनुचित समय स्थिति में कुपात्र को दिया जाता है।